



पंथनिरपेक्षतावाद तथा इसका भारतीय परिप्रेक्ष्य

डॉ महेन्द्र प्रताप तिवारी,

विभागाध्यक्ष (समाजशास्त्र विभाग),

बजरंग महाविद्यालय, कुण्डा, प्रतापगढ़।

सारांश:- पंथनिरपेक्षतावाद वह आधुनिक अवधारणा है जो मानवतावादी मूल्यों का समर्थन करते हुए मानव कल्याण को ही सर्वोच्च स्थान देता है। मौलिक रूप से पाश्चात्य अवधारणा के रूप में पंथनिरपेक्षतावाद को सामाजिक-राजनीतिक प्रत्यय स्वीकार करते हुए इसे प्रगतिशीलता एवं आधुनिकता का सूचक माना जाता है। इस अवधारणा का आविर्भाव 16वीं शताब्दी में चर्च की भूमिका और समाज की कुरीतियों के विरुद्ध पुनर्जागरण के फलस्वरूप उत्पन्न प्रबोधन को माना जाता है। राज्य तथा सामाजिक जीवन को पंथ से तटस्थ एवं निष्पक्ष होकर कार्य करने की अवधारणा को पंथनिरपेक्षतावाद के रूप में जाना जाता है। दूसरे शब्दों में पुनर्जागरण एवं प्रबुद्धकाल के उदय से राज्य एवं पंथ के मध्य विभाजक रेखा का अस्तित्व में आना ही पंथनिरपेक्षतावाद के आविर्भाव को सम्भव बनाया। पंथनिरपेक्षतावाद की अवधारणा उद्देश्यपूर्ण रूप से नैतिक, किन्तु धार्मिक रूप से निषेधात्मक है। कभी-कभी धर्मनिरपेक्षतावाद को पंथनिरपेक्षतावाद एवं इहलौकिकतावाद के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है, जो कि अनुचित है। धर्म शब्द भारतीय आध्यात्मिक जीवन दर्शन से उद्भूत होने के कारण इसका तादात्म्य पंथ से नहीं हो सकता है। पंथ को इहलौकिक भी नहीं माना जा सकता है क्योंकि पंथ इहलौकिक होने के साथ रहस्यात्मक भी होता है। जहाँ भारतीय पंथनिरपेक्षतावाद न तो धर्म की प्रासंगिकता को अस्वीकार करता है और न ही अधार्मिकता को प्रश्रय देता है, वहीं पाश्चात्य पंथनिरपेक्षतावाद में पारलौकिक जगत का अस्वीकरण कर लौकिकता को तर्क और वैज्ञानिकता के आधार पर समर्थन करता है। भारत को पंथनिरपेक्ष राष्ट्र कहने से यह बोध नहीं होता है कि यहाँ अधार्मिकता को प्रश्रय दिया जाता है, अपितु इससे यह ध्वनित होता है कि भारत देश किसी भी धर्म द्वारा शासित न होकर धार्मिक सहिष्णुता एवं धार्मिक निष्पक्षता के दर्शन से शासित है। अतः पंथनिरपेक्षता में अधार्मिकता, अनीश्वरवाद और भौतिक सुखों पर बल न देकर आध्यात्मिक मूल्यों की सार्वभौमिकता पर बल दिया जाता है। मानवतावाद और वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित पंथनिरपेक्षतावाद का लक्ष्य रूढ़िवाद, कट्टरतावाद, संप्रदायवाद, अंधविश्वास एवं धर्म के आधार पर समाज में विपथन का विरोध करना है।

मुख्य शब्द :- पंथनिरपेक्षतावाद, पुनर्जागरण, प्रबोधनकाल, धर्मनिरपेक्षतावाद, इहलौकिकतावाद, कट्टरतावाद, संप्रदायवाद, मानवतावाद, सर्वधर्मसमभाव, अलौकिक।

प्रस्तावना :- समकालीन समाज एवं राजनीति में पंथनिरपेक्षता का अभ्युदय पुनर्जागरण काल में आस्था एवं विश्वास पर तर्कबुद्धि की प्रतिष्ठा को माना जाता है। पुनर्जागरण काल से पूर्व सम्पूर्ण यूरोप में सामाजिक-राजनीतिक गतिविधियों के संचालन में ईसाई धर्म की परम्परागत भूमिका का ही प्रभुत्व था। स्वतन्त्र चिन्तन, तार्किक दृष्टिकोण, मानवीय गरिमा, न्याय आदि मूल्यों के यथोचित महत्त्व के अभाव के कारण मानवता दासता एवं रूढ़ियों की बेड़ियों से जकड़ा हुआ था। ईसाई धर्म के विरुद्ध बोलना मृत्युदण्ड का अंगीकार करना था। पुनर्जागरण काल के आविर्भाव से इस अंधकार युग का अवसान हुआ। यूरोपीय समाज में सुधार के फलस्वरूप ईसाई धर्म के प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदाय के उदय ने चर्च की सत्ता में नैतिक पतन की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट हुआ। धार्मिक-सामाजिक सुधार आन्दोलनों के कारण सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में धर्म का निषेध कर इहलौकिकता पर बल दिया

गया। इस प्रकार पुनर्जागरण एवं प्रबोधनकाल के उदय, विज्ञान के उद्भव एवं विकास, चर्च और सामंतो में द्वन्द्व, और धर्म सुधार आन्दोलन के कारण धर्म की सत्ता का ह्रास हुआ। इस प्रकार पंथ एवं राज्य के मध्य एक विभाजक रेखा के अस्तित्व की परिणति पंथनिरपेक्षता में हुई। पुनर्जागरण के बाद ही सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य में रूढ़िवाद, अंधविश्वास, शोषण, अधिनायकवाद, एकाधिकारवाद आदि के विरुद्ध स्वतन्त्र चिंतन की आवृत्ति बढ़ती गयी। कालान्तर में धर्म एवं राजनीति की पारस्परिक निर्भरता के अवसान की प्रक्रिया से मानवीय मूल्यों के पोषण की पृष्ठभूमि का सृजन हुआ।

पंथनिरपेक्ष शब्द का अंग्रेजी रूपांतर 'सेकुलर' है तथा 'सेकुलर' शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के 'सेकलूम' शब्द से हुई है। 'सेकलूम' शब्द का अर्थ देश-काल से संयुक्त वर्तमान संसार है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'सेकूलरिष्ट' वह व्यक्ति है जो सांसारिक और लौकिक सत्ता में विश्वास करने के विचार से अनुप्राणित है। पंथनिरपेक्षता विश्व में धार्मिक एवं अर्द्धधार्मिक बोधों का नाश है। वस्तुतः पंथनिरपेक्षता मानवतावादी जीवनदर्शन है, जिसमें पारलौकिक सत्ता का निषेध करते हुए सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि से सम्बन्धित प्रगति को सांसारिक शक्ति पर आधारित माना जाता है। यह सिद्धान्त सांसारिक प्रगति एवं कल्याण के लिए 'आत्मदीपो भव' के मार्ग की मीमांसा करता है। विज्ञान, तर्कबुद्धि, प्राकृतिक नियमों, एवं वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग द्वारा ही मानव का कल्याण सम्भव है। डी० ई० स्मिथ के अनुसार पंथनिरपेक्षतावाद वह अवधारणा है जो व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से धार्मिक स्वतंत्रता की गारंटी देती है तथा व्यक्ति के धर्म पर ध्यान दिए बिना एक नागरिक के रूप में समान व्यवहार करती है। यह अवधारणा संवैधानिक रूप से न तो किसी धर्म से सम्बन्धित है, न किसी धर्म को बढ़ावा देती है और न ही उसमें हस्तक्षेप करती है। दूसरी ओर पंथसापेक्षता की अवधारणा राज्य एवं पंथ के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध तथा राज्य धर्म के आधार पर नागरिकों में भेदभाव पर बल देता है।

वस्तुतः पंथनिरपेक्षता एक जीवनदृष्टि है, जिसका लक्ष्य राज्य एवं धर्म के बीच विभाजक रेखा खींचकर राज्य के कर्तव्यों का धार्मिक विषयों में हस्तक्षेप का निषेध करना है। ऐसे में राज्य का कोई राजधर्म नहीं होता है। यह विचारधारा न तो ईश्वरवादी है और न ही निरीश्वरवादी है क्योंकि पंथनिरपेक्षता मानव के सर्वांगीण विकास में विज्ञान एवं तकनीकी के प्रयोग एवं प्रसार को उपयोगी मानता है। सभी धर्मों के बीच तटस्थता एवं निष्पक्षता के विचार का समर्थन करते हुए यह विचारधारा इस बात का हिमायती है कि धर्म व्यक्तिगत मामला है। राज्य को व्यक्ति के धार्मिक मामलों में तब तक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जब तक उसके ऐसे कृत्य से राज्य के सामाजिक ताना-बाना और राष्ट्रीय भावना को ठेस न पहुँचे। यदि इस अवधारणा को नैतिक कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगा। नैतिक व्यवस्था का लक्ष्य एवं स्रोत मानव निर्मित समाज ही है। राजनीति, कानून, शैक्षिक वातावरण, आर्थिक व्यवस्था एवं राज्य के नीतिपरक व्यवस्था में धर्म एवं धार्मिक संस्थाओं की भूमिका का निषेध करना पंथनिरपेक्षता का लक्ष्य है। पंथनिरपेक्षता का लक्ष्य व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समता एवं सामाजिक न्याय को अंगीकार करना है, जो कहीं न कहीं सर्वधर्मसमभाव एवं धार्मिक सहिष्णुता तथा मानवतावादी विचार को पुष्पित एवं पल्लवित करती है। राज्य को चाहिए कि किसी विशेष धर्म का समर्थक न होकर समाज एवं राष्ट्र में सह-अस्तित्व, विश्वबन्धुत्व आदि नैतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता करे।

भारतीय पंथनिरपेक्षतावाद

भारतीय संविधान के अनुसार भारत एक पंथनिरपेक्ष राज्य है क्योंकि यहाँ राज्य विविध पंथों और धर्मों के मध्य सामंजस्य बनाए रखने का प्रयास करता है। वस्तुतः भारत न तो रूस की समान धर्म का अस्वीकारण और विरोध करता है तथा न ही पाकिस्तान जैसे देशों के समान किसी विशेष धर्म को राजधर्म स्वीकार करता है। भारत में राज्य सभी धार्मिक संगठनों, पंथों एवं उनके अनुयायियों के साथ निष्पक्ष व्यवहार करता है। यहाँ भारतीय पंथनिरपेक्षतावाद एवं पाश्चात्य पंथनिरपेक्षतावाद में अन्तर स्पष्ट है। जब भारत को पंथनिरपेक्ष राष्ट्र कहा जाता है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि यह पारलौकिक सत्ता को अस्वीकार करता है अथवा जीवन के लिए धर्म की उपयोगिता का निषेध करता है या अधार्मिकता को प्रोत्साहित करता है। भारतीय राज्य द्वारा किसी एक धर्म को न तो वरीयता दी जाती है और न ही अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में किसी विशेष धर्म को वरीयता दिया जाता है। धार्मिक निष्पक्षता और सहिष्णुता का दृष्टिकोण जीवन के लिए अधिक उपादेय है। इस प्रकार स्पष्ट है कि पंथनिरपेक्षता का पाश्चात्य अर्थ 'धर्मों के प्रति तटस्थता' और भारतीय संदर्भ में 'धर्मों के प्रति निष्पक्षता' है। स्पष्ट है कि धर्मों में समभाव, सहिष्णुता, निष्पक्षता एवं सह-अस्तित्व भारतीय पंथनिरपेक्षता में प्राण वायु का संचार करते हैं। वस्तुतः भारतीय सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं दार्शनिक व्यवस्था वसुधैव कुटुम्बकम्, सर्वे भवन्तु सुखिनः आदि आदर्शों से अनुप्राणित रही है। महोपनिषद् में कहा गया है कि-

उदारचरितानाम् तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

अर्थात् यह मेरा है और यह तेरा है, ऐसी सोच छोटे विचारों वाले लोगों की होती है। इसके विपरीत उदार रहने वाले व्यक्ति के लिए समस्त संसार ही परिवार है। इसी प्रकार ऋग्वेद के 10वें मंडल के 191वें सूक्त में कहा गया है कि हम सब एक साथ चलें, एक साथ बोलें, हमारे मन एक हों-

संगच्छध्वं संवदध्वं संवो मनांसि जानताम्।

देवा भागम् यथा पूर्वं संजनाना उपासते॥

इसी प्रकार वृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है कि सभी सुखी हों, सभी रोगमुक्त रहें, सभी का जीवन मंगलमय बनें और कोई भी दुःख का भागी न बने (सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत्)॥

भारतीय संविधान में वे समस्त व्यवस्थाएँ हैं जो पंथ तथा राज्य के मध्य स्पष्ट विभाजन करती हैं। भारत एक पंथनिरपेक्ष राज्य है। यह सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्रियाकलापों को धर्म से पृथक् रखकर, नागरिकों के बीच धर्मों के आधार पर भेदभाव की संभावनाओं का निषेध करता है। मूल संविधान में धार्मिक स्वतंत्रता के रूप में मौलिक अधिकार को स्वीकार करते हुए भी प्रारम्भिक भारतीय संविधान में पंथनिरपेक्ष (सेकुलर) शब्द का उल्लेख नहीं था। 'सेकुलर' शब्द संविधान की प्रस्तावना में 42वें संविधान संशोधन द्वारा 1976 ई0 में आपातकाल के दौरान जोड़ा गया। ऐसी स्थिति में अनेक प्रश्न और भ्रांतियाँ उत्पन्न हो सकती हैं, जैसे- क्या वर्ष 1976 ई0 के पूर्व भारतीय राजनीतिक व्यवस्था सेकुलर नहीं थी ? क्या भारतीय संविधान 1976 से सेकुलर बना ? मूल संविधान में सेकुलर शब्द न शामिल करने का क्या प्रयोजन हो सकता है ? इन प्रश्नों के उत्तर हैं कि भारतीय संविधान आद्योपांत पंथनिरपेक्षता की भावना से ओत-प्रोत है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय संविधान के निर्माताओं ने संविधान में सप्रयोजन पंथनिरपेक्षता शब्द का प्रयोग नहीं किया। उल्लेखनीय है कि मजहब के नाम पर भारत का विभाजन हुआ था और भारत के संविधान निर्माता मजहबी जुनूनों से सुपरिचित थे। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत के संविधान निर्माता संविधान में पंथनिरपेक्ष शब्द के समावेश के दुरुपयोग-जन्य दुष्परिणामों से आशंकित थे। आज उनकी आशंकाएँ सत्य प्रतीत हो रही हैं। जिस प्रकार आज पंथनिरपेक्षता के नाम पर अवसरवादी राजनीतिक गठबंधन बन रहे हैं, असमय विधायिकाओं का विघटन हो रहा है, राजस्व का एक बड़ा हिस्सा विकास के बजाय चुनावी खर्च के रूप में नष्ट हो रहा है, उनकी आशंकाएँ सत्य प्रमाणित हो रही हैं। संभवत यही कारण है कि उन्होंने संविधान में भी सभी व्यवस्थाएँ सुनिश्चित करने का प्रयास किया जिससे भविष्य में धर्म, मजहब के नाम पर घटित हो सकने वाली सभी अप्रिय स्थितियों को रोका जा सके और धर्म के नाम पर व्यक्ति के साथ होने वाले भेदभाव को दूर किया जा सके। आज भारतीय संविधान की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि भारत एक पंथनिरपेक्ष राज्य है तथा राज्य की संप्रभुता का स्रोत भारतीय जनता है। दूसरे शब्दों में राज्य की संप्रभुता का कोई दैवीय या धार्मिक आधार नहीं है।

प्रश्न यह है कि क्या भारत पंथनिरपेक्ष राज्य है ? इस प्रश्न का सैद्धांतिक दृष्टि से कोई महत्व नहीं है क्योंकि भारत के संविधान में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि भारत पंथनिरपेक्ष राज्य है तथा भारतीय संविधान के अनेक अनुच्छेदों में पंथनिरपेक्षता की भावना को अभिव्यक्त किया गया है। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि इस प्रकार के प्रश्न का औचित्य व्यावहारिक दृष्टिकोण है और इसी कारण इसका कोई उत्तर देने से पहले यह जानना आवश्यक है कि पंथनिरपेक्ष राज्य किसे कहा जाता है ? इस सन्दर्भ में डी0 ई0 स्मिथ ने पंथनिरपेक्ष राज्य की जो परिभाषा दी है उसका उल्लेख किया जा सकता है। उनके अनुसार पंथनिरपेक्ष राज्य वह है जो व्यक्ति तथा समुदाय को पंथ की स्वतंत्रता का आश्वासन देता है, जो व्यक्ति के पंथ पर विचार किए बिना नागरिक के रूप में उनके साथ समान व्यवहार करता है, जो संवैधानिक दृष्टि से किसी धर्म के साथ सम्बद्ध नहीं होता, जो धर्म को ना तो प्रोत्साहन करता है और ना उसमें हस्तक्षेप करता है। अब भारत के पंथनिरपेक्ष राज्य होने से संबंधित प्रश्न पर विचार से यह स्पष्ट है कि भारतीय संविधान में किसी एक धर्म को न तो राजकीय धर्म को घोषित किया गया है और न ही भारतीय संविधान में किसी विशेष धर्म को प्रश्रय देने तथा धर्म के आधार पर नागरिकों में भेदभाव करने का कोई प्रावधान है। लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाए तो देश में आज भी शिक्षा, कानून, राजनीति और सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन पर धर्म का पर्याप्त प्रभाव है।

भारत में ऐसी अनेक धार्मिक संस्थाएं हैं जो नैतिक शिक्षा के नाम पर कुछ विशेष धर्म के नियमों, विश्वासों एवं कर्मकाण्डों की शिक्षा देती हैं। भारतीय संविधान में भी इस प्रकार का प्रावधान है कि सरकार अल्पसंख्यक वर्गों द्वारा स्थापित धार्मिक शिक्षा संस्थानों को आर्थिक सहायता प्रदान करती है। क्या इस प्रकार के कार्य धर्मनिरपेक्ष राज्य या पंथनिरपेक्ष राज्य की अवधारणा के अनुकूल हैं? पुनश्च, आज तक हमारे देश में समान नागरिक संहिता को कानूनी स्वरूप नहीं दिया जा सका है। कतिपय धर्म के अनुयायियों पर धार्मिक कानूनों का इतना गहरा तथा व्यापक प्रभाव है। उन पर विवाह, उत्तराधिकार आदि के संबंध में उनकी प्राचीन परंपरागत धार्मिक कानून ही लागू होते हैं। धर्म और जाति के आधार पर सेवाओं में आरक्षण की व्यवस्था भी धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र की धारणा के प्रतिकूल है, चाहे इसके औचित्य के लिए कुछ भी तर्क दिए जाएं। हमारे देश की राजनीति में भी धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। टिकट बटवारे से लेकर मंत्रिमंडल और विविध समितियों में स्थान पाने तक धर्म की महती भूमिका रही है। सरकारी पदों पर विराजमान अनेक महत्वपूर्ण पदाधिकारी, मंत्री आदि धार्मिक समारोहों, धार्मिक स्थलों पर अपनी भागीदारी इसलिए भी सुनिश्चित करते हैं कि कुछ विशेष धर्म या पंथ को मानने वालों का कृपा मत प्राप्त किया जा सके। कुछ ऐसे राजनीतिक दल भी भारत में स्थापित हैं जिनका अस्तित्व धर्म पर ही टिका हुआ है। इन सब तर्कों को ध्यान में रखते हुए भारत को वास्तविक अर्थों में पंथनिरपेक्ष राष्ट्र कहना कठिन प्रतीत होता है।

भारत के पंथनिरपेक्षता की प्रकृति के संदर्भ में आशंकित होना निराधार है। सोवियत संघ के साम्यवादी दल के नेता लेनिन ने मार्क्सवाद का रशियन रूपांतरण और चीनी कम्युनिस्ट नेता माओ ने मार्क्सवाद का चीनी संस्करण लागू किया था। यही बात पंथनिरपेक्षता के विषय में भी सत्य है। भारतीय सामाजिक जीवन में लौकिकता और पारलौकिकता, व्यक्तिगत और सार्वजनिक, धर्म एवं राजनीति में विभाजन रेखा खींचना, राजनीतिक कार्यक्रमों को धार्मिक गतिविधियों से बिल्कुल पृथक रखना सम्भव नहीं है। पश्चिमी समाजों में पंथनिरपेक्षता के आविर्भाव के पूर्व की धार्मिक परिस्थितियां भारत में कभी नहीं थी क्योंकि वहाँ की तरह भारत में कोई प्रतिष्ठित धार्मिक संस्था भी नहीं थी। इस कारण भारत में राज्य सत्ता एवं धर्म सत्ता में कभी व्यवहारिक संघर्ष नहीं था। पंथनिरपेक्षता का अर्थ अधर्म नहीं है। इसका अर्थ यह है कि हम सभी धर्मों एवं विश्वासों का सम्मान करते हैं तथा हमारा राष्ट्र किसी धर्म विशेष के साथ तादात्म्य नहीं स्थापित करता है।

पंथनिरपेक्षता को प्रभावी बनाने के उपाय:

भारत में पंथनिरपेक्षता की पृष्ठभूमि को सर्वाधिक क्षति राजनीतिक दलों के आचरण से हुआ है। वस्तुतः स्वतंत्र भारत में कुछ राजनीतिक दलों द्वारा अल्पसंख्यकों के मन में बहुसंख्यकों का भय उत्पन्न कर कृपा मत प्राप्त करने के लिए उनका भयादोहन करना नितांत अनैतिक है। कुछ राजनीतिक दल एक विशेष प्रकार के साम्प्रदायिकता की तो निंदा करते हैं, किंतु दूसरी तरह के सांप्रदायिकता के विषय में या तो चुप हो जाते हैं या उसका समर्थन और प्रशंसा करते हैं। पुनश्च, भारत में पंथनिरपेक्षता को प्रभावी बनाने के लिए यह अत्यावश्यक है कि सभी राजनीतिक दलों एवं संगठनों के लिए एकसमान आचार संहिता का सृजन हो, जिसका पालन करना कानूनी रूप से बाध्यकारी हो। पंथनिरपेक्षता के आदर्श को साकार करने के लिए समान नागरिक संहिता को कानूनी जामा पहनाया जाना आवश्यक है। उल्लेखनीय है कि कई बार माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात को रेखांकित किया है कि संविधान के नीति निर्देशक तत्वों के भाग चार में उल्लिखित अनुच्छेद 44 को वैधानिक स्वरूप देने के लिए संविधान में संशोधन किया जाना आवश्यक है। ऐसा करना तर्कसंगत है क्योंकि जिस प्रकार भारत में सभी धर्मों, पंथों, सम्प्रदायों आदि के लिए आपराधिक कानून समान रूप से लागू है, उसी प्रकार समान सिविल कानून (समान आचार संहिता) भी लागू हो।

भारतीय संविधान में मूलाधिकार के रूप में धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार प्रदत्त है, जिसमें यह प्रावधानित है कि अल्पसंख्यक वर्गों को अपने-अपने धर्मों की रक्षा, प्रचार एवं प्रसार के लिए शिक्षण संस्थाओं की स्थापना, संचालन एवं प्रबन्धन का अधिकार है। व्यावहारिक धरातल पर इस अधिकार का दुरुपयोग ही दृष्टिगोचर हो रहा है क्योंकि कुछ अल्पसंख्यक वर्गों द्वारा शिक्षण संस्थाओं का दुरुपयोग साम्प्रदायिक वैमनस्य के प्रचार एवं प्रसार के लिए किया जा रहा है। वस्तुतः सभी प्रकार की धार्मिक, शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं को राज्य द्वारा आर्थिक सहायता बंद कर देनी चाहिए क्योंकि प्रत्येक धार्मिक संस्था का यह भी कर्तव्य है कि वह अपनी रुचि की शिक्षा संस्थानों एवं सांस्कृतिक संस्थाओं के विकास हेतु आर्थिक स्रोतों का स्वयं सृजन करें। पुनश्च, पंथनिरपेक्षता और सर्वधर्मसमभाव को बढ़ावा देने वाले विषयों को प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित किया जाना चाहिए क्योंकि शिशुओं एवं बच्चों का मन कोरी पट्टिका के समान होता है, जिसमें अच्छे या बुरे संस्कार सरलता और सहजता से प्रवेश करते हैं और

गहरा प्रभाव डालते हैं। अतः इन विद्यार्थियों के पाठ्यक्रमों में ऐसे विषयों का समावेश करना चाहिए जो उनके कोमल, सहज एवं सरल मन में पंथनिरपेक्षता एवं सर्वधर्मसमभाव के संस्कार का सृजन कर सके।

पंथनिरपेक्षता को साकार करने के लिए यह भी आवश्यक है कि राष्ट्रीय त्यौहारों, जैसे स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस को ही सार्वजनिक अवकाश घोषित किया जाए और अन्य त्यौहारों जो सांप्रदायिकता की भावना उत्पन्न करते हो, बंद कर देना चाहिए। परम्परागत त्यौहारों के लिए संप्रदाय विशेष को कुछ आकस्मिक अवकाश दिए जाए। इन धार्मिक त्यौहारों पर भी इस बात का प्रबंध हो कि धार्मिक उन्माद न फैलाया जा सके। उपर्युक्त सुझावों की यद्यपि अनेक आलोचना की जा सकती हैं और यह कहा जा सकता है कि इन सुझावों का व्यावहारिक रूप नहीं है अथवा यह कहा जा सकता है कि इसे प्राचीन परम्परा पर आघात लगेगा आदि। यदि हमें लोकतंत्र की रक्षा करनी है और देश की प्रगति को सुदृढ़ आधार देना है तो धर्मनिरपेक्षता या पंथनिरपेक्षता की संकल्पना को व्यावहारिक स्तर पर उतरना होगा। यदि ऐसा नहीं होता तो धर्मनिरपेक्षता या पंथनिरपेक्षता जो इस समय देखने में है, उसे सत्य धर्मनिरपेक्षता या पंथनिरपेक्षता नहीं कहा जाएगा। इस झूठे धर्मनिरपेक्षता या पंथनिरपेक्षता से देश की प्रगति नहीं हो सकती। सांप्रदायिकता की फसल तैयार होती रहेगी और उसी को काटकर पुनः इसी बीज को जनमानस रूपी खेत में बोया जाता रहेगा। अतः धर्मनिरपेक्षता या पंथनिरपेक्षता को सच्चे अर्थों में व्यावहारिक स्तर पर उतरना ही होगा।

संदर्भ सूची

1. हेसिंग्स, जेम्स (1909), एन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स: डिजिटल लाइब्रेरी ऑफ इण्डिया आइटम 2015.56055।
2. राधाकृष्णन, जेम्स (2005), अकेशनल स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स: दी यूनिवर्सिटी ऑफ मिसिगन, पब्लिकेशन डिविजन, मिनिश्री ऑफ इन्फार्मेशन एण्ड ब्राडकास्टिंग्स।
3. हुसैन, ए (1987), दी नेशनल कल्चर ऑफ इण्डिया, न्यू दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट।
4. पाठक, आर (1987), एन इंट्रोडक्शन टू सोशियो-पोलिटिकल फिलोसोफी, इलाहाबाद: अभिमन्यु प्रकाशन।
5. विल्सन, बी. (1969), रिलीजन इन सेकुलर सोसायटी, आक्सफोर्ड: आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस।
6. वर्मा, वी.पी. (2012), धर्म दर्शन की मूल समस्याएँ, दिल्ली विश्वविद्यालय: हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय।
7. स्मिथ, डी.ई. (1963), इण्डिया ऐस ए सेकुलर स्टेट, प्रिन्सटन, एन.जे. : प्रिन्सटन विश्वविद्यालय प्रेस।
8. राधाकृष्णन, एस. (1963), रिकवरी ऑफ फेथ, डिजिटल लाइब्रेरी ऑफ इण्डिया: हिन्दी पॉकेट बुक्स।
9. गिरि, एस. ए. (2018), वृहदारण्यक उपनिषद्, रिषीकेश: श्री कैलाश आश्रम।
10. सिंह, एस.बी. (2000), ए क्रिअकल स्टडी ऑफ फिलॉसफी ऑफ रिलीजन, इलाहाबाद: शेखर प्रकाशन।